मीमांसा दर्शन का सामान्य परिचय

⇒ मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक - महर्षि जैमिनी।

⇒ अर्थ - 'मीमांसा' शब्द का अर्थ है - 'पूजित विचार' या 'पूजित जिज्ञासा'।

सर्वप्रथम यह शब्द वैदिक कर्मकाण्ड विषयक जिज्ञासा के लिए प्रयुक्त होता था। इस प्रकार श्रुतियों के पारस्परिक विरोध का परिहार करके उनमें एक-वाक्यता स्थापित करने के लिए जो विचार-विमर्श किया जाता था उसे 'मीमांसा' कहते थे।

⇒ मीमांसा वेद के मन्त्र-ब्राह्मणरूपी पूर्वभाग या कर्मकाण्ड पर आधारित है, अतः इसे पूर्वमीमांसा, कर्ममीमांसा या धर्ममीमांसा कहते हैं।

⇒ मीमांसा-सूत्र का प्रथम सूत्र है - 'अथातो धर्म-जिज्ञासा' (अब धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए)।

⇒ मीमांसा का लक्ष्य वैदिक-कर्मकाण्ड का संगत व्याख्यान करना रहा है। साथ ही स्वर्ग के स्थान पर मोक्ष को पुरुषार्थ माना है।

⇒ महर्षि जैमिनि 'मीमांसा-सूत्र' के रचयिता है किंतु प्रवर्तक नहीं है।

⇒ मीमांसा-सूत्र पर शाबर स्वामी का भाष्य है।

⇒ प्रभाकर मिश्र → बृहती टीका (शाबर भाष्य पर है)।

⇒ शालिकनाथ → (i) ऋजुविमला (बृहती पर टीका लिखा है)।

⇒ शालिकनाथ → (ii) प्रकरण-पञ्चिका

⇒ कुमारिल भट्ट → श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुप्टीका।

⇒ पार्थसारथि मिश्र → 'न्याय रत्नाकर' (श्लोकवार्तिक पर टीका)।
प्रकरण ग्रंथ - 'शास्त्र दीपिका'।

⇒ पूर्वमीमांसा के दो मत प्रसिद्ध हैं :—

(i) प्रभाकर मिश्र - 'गुरु मत'। → 5 प्रमाण को मानते हैं।

(ii) कुमारिल भट्ट - 'भाट्ट मत'। → 6 प्रमाण को मानते हैं।

⇒ 6 प्रमाण हैं :- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि।

⇒ महर्षि जैमिनि ने तीन ही प्रमाण स्वीकार किया है –
प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण।

⇒ ख्यातिवाद → भ्रम, भ्रांति या मिथ्याज्ञान के विवेचन को ख्याति-वाद कहते हैं।

(i). प्रभाकर मिश्र – 'अख्यातिवाद' कहलाता है।

(ii). कुमारिल भट्ट – 'विपरितख्यातिवाद' कहलाता है।

⇒ प्रमाण्यवाद :– स्वतः प्रमाण्य
⇒ अप्रामाण्यवाद :– परतः अप्रमाण्य

⇒ मीमांसा की तत्वमीमांसा :– धर्म, मोक्ष, अनीश्वरवाद, सृष्टिवाद, पदार्थ, ज्ञातिशक्तिवाद, कर्मवाद।

⇒ पदार्थ – आठ बताये गए हैं –

प्रभाकर → (8) द्रव्य, गुण, सामान्य, कर्म, शक्ति, संख्या, सादृश्य, समवाय।

कुमारिल → (5) द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, अभाव।

⇒ प्रभाकर 9 द्रव्यों को मानते हैं – पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन।

⇒ कुमारिल 11 द्रव्यों को मानते हैं – पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन, शब्द, तमस्।

⇒ भट्ट के मत में ज्ञान अनुमेय है परन्तु प्रभाकर ज्ञान को स्वयं प्रकाश मानता है।

⇒ प्रभाकर का ज्ञान विषयक मत है – 'त्रिपुटिप्रत्यक्षवाद'।
⇒ कुमारिल का ज्ञान विषयक मत है – 'ज्ञाततावाद'।

⇒ मीमांसा बहुत्ववादी वस्तुवाद है। इसके अनुसार इस जगत के अनेक पदार्थ तथा अनेक जीवात्मा, बद्ध एवं मुक्त, सब सत्य हैं।

⇒ 'धर्म' मीमांसा का जिज्ञास्य विषय है।

⇒ मीमांसा आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखता है।

—×—

अपूर्व का सिद्धान्त

अपूर्व महर्षि जैमिनि के अनुसार एक प्रकार की अदृश्य शक्ति है। इसे या तो फल का पूर्ववर्ती अदृश्य कहा जा सकता है या कर्म की अनुवर्ती अवस्था। 'अपूर्व' एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा कालांतर में फल की प्राप्ति होती है। कर्म तथा उसके फल के मध्य अपूर्व एक अलौकिक कड़ी है।

मीमांसा दर्शन में कर्म पर अत्यधिक बल दिया गया है। इनके अनुसार कर्म का उद्देश्य देवता को संतुष्ट करना नहीं अपितु आत्मा की शुद्धि है। वेदानुसार मीमांसा दर्शन भी बताती है कि किन-किन कर्मों का पालन करना चाहिए और किनका परित्याग। वे कर्म हैं –

(1) नित्य कर्म :→ संध्या, पूजा, ध्यान आदि प्रतिदिन किये जाने योग्य कर्म नित्य कर्म हैं। दैनिक प्रार्थना भी नित्य कर्म हैं। इन कर्मों के नहीं करने से पाप का संचय होता है।

(2) नैमित्तिक कर्म :→ विशेष अवसरों पर किये जाने वाले कर्म। जैसे कि, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, जन्म, विवाह, मृत्यु आदि कर्म नैमित्तिक कर्म हैं।

(3) काम्य कर्म :→ विशेष उद्देश्यों यथा, पुत्र प्राप्ति, ग्रह शांति, धन प्राप्ति आदि के लिए जो यज्ञ, हवन, बलि आदि अन्य कर्म किये जाते हैं, वे काम्य कर्म कहलाते हैं। ऐसे कर्मों को करने से, पुण्य संचय होता है।

(4) निषिद्ध कर्म :→ वे कर्म जिनके करने का निषेध रहता है। इन्हें करने पर व्यक्ति को पाप लगता है, जिसकी सजा नरक जाना है।

(5) प्रायश्चित कर्म :→ निषिद्ध कर्म करने पर यदि व्यक्ति अपनी गलती समझकर पश्चाताप करता है, तो वह पाप से बच सकता है। इसके लिए मीमांसा-दर्शन में कुछ प्रायश्चित कर्म भी बताये गये हैं।

उपर वर्णित कर्मों का पालन वेद को आदेश समझकर करना चाहिए। इस प्रकार से मीमांसा-दर्शन में 'निष्काम कर्म' को ही 'धर्म' माना गया है। एक व्यक्ति को कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए परन्तु उसे कर्म के फलों की चिंता नहीं करनी चाहिए।

मीमांसा-दर्शन के अनुसार विश्व की सृष्टि ऐसी है कि कर्म करने वाला उसके फल से वंचित नहीं हो सकता। प्रत्येक कर्म का अपना फल होता है। मीमांसा कर्म फल कर्म पालन के बाद कैसे मिल सकता है? अथवा यह कैसे संभव है कि अभी का किया गया कर्म का फल बाद में स्वर्ग में मिलेगा? इन प्रश्नों के उत्तर स्वरूप 'अपूर्व सिद्धांत' का सहारा लेती है?

'अपूर्व' से तात्पर्य है- वह जो पहले नहीं था। उसका मानना है कि इस लोक में किए गए कर्म एक अदृश्य शक्ति उत्पन्न करते हैं जिसे अपूर्व कहा जाता है। मृत्यु के बाद आत्मा परलोक में जाती है जहाँ उसे अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। 'अपूर्व' के आधार पर ही आत्मा को सुख-दुख भोगने पड़ते हैं।

कुमारिल के अनुसार 'अपूर्व' अदृश्य शक्ति है जो आत्मा के अन्दर उदय होती है। कर्म की दृष्टि से 'अपूर्व' 'कर्म-सिद्धांत' (Law of Karma) कहा जाता है। अपूर्व सिद्धांतानुसार प्रत्येक कारण का उदय होता है। यहाँ पर कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि यदि बीज में वृक्ष उत्पन्न करने की शक्ति निहित है तो क्यों नहीं सर्वदा बीज से वृक्ष का आविर्भाव होता है। मीमांसा इसका कारण बाधाओं का उपस्थित होना बताती है जिसके कारण शक्ति का ह्रास हो जाता है। सूर्य में पृथ्वी को आलोकित करने की शक्ति है परन्तु यदि मेघ के द्वारा सूर्य को ढँक लिया जाए तो सूर्य पृथ्वी को नहीं आलोकित कर सकता है। इस प्रकार से 'अपूर्व सिद्धान्त' सार्वभौम नियम है,

जो मानता है कि वाधाओं के हट जाने से प्रत्येक वस्तु में निहित शक्ति कुछ-न-कुछ फल अवश्य देगी। 'अपूर्व' को संचालित करने के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। यह स्वसंचालित है। 'अपूर्व' की सत्ता का ज्ञान वेद से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अर्थापत्ति भी 'अपूर्व' का ज्ञान देता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि अपूर्व के बदले ईश्वर को ही यह दायित्व मीमांसक क्यों नहीं सौंपना चाहते? तो इसके उत्तर में वे कहते हैं कि, मनुष्य के कर्म नाना प्रकार के होते हैं। अतः उनका कारण कोई एक कैसे हो सकता है?

इस प्रकार से सब मिलाकर देखा जाए तो मीमांसकों का यह अनूठा सिद्धांत तर्कसंगत तो लगता है किंतु यहाँ शंकराचार्य की आलोचना भी सही प्रतीत होती है कि, 'अपूर्व' अचेतन होने के कारण किसी आध्यात्मिक सत्ता के अभाव में संचालित नहीं हो सकते। अतः कर्म के फलों की व्याख्या अपूर्व से करना असंगत है।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मीमांसा दर्शन 'अपूर्व' शब्द का उपयोग मुख्य रूप से यज्ञों से प्राप्त होने वाले कर्मों के संदर्भ में करते हैं। क्योंकि यह एक तरफ कर्म से उत्पन्न होता है, तो दूसरी ओर कर्मफल का इसमें निवपन होता है। अतः यह 'अपूर्व' भी 'शक्ति' जैसे स्वतंत्र द्रव्य का ही कर्मकाण्ड के क्षेत्र में एक अनूठा प्रतीक है। इस प्रकार से कर्म और कर्मफल के समय में एक दूरी दीख पड़ती है। क्योंकि जैमिनि के अनुसार यज्ञ से ही फलों की प्राप्ति होती है। कर्म के संपादन एवं फल के समय में अंतर दिखाई पड़ता है। इसलिए मनुष्य को उचित एवं निष्काम कर्म करने चाहिए यही मीमांसा के अनुसार 'धर्म' है। इस धर्म-कर्मानुसार आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है और व्यक्ति को इस आत्मज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति संभव है।